केन्ज़ का रोज़गार सिद्धान्त
(KEYNES'S THEORY OF EMPLOYMENT)

हम पिछले अध्याय में पढ़ चुके हैं कि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के रोजगार सिद्धान्त में क्या त्रुटियाँ हैं। केन्ज़ ने अपनी पुस्तक **"रोजगार, ब्याज तथा मुद्रा का सामान्य सिद्धान्त"**—*General Theory of Employment, Interest and Money* में न केवल प्रतिष्ठित रोजगार सिद्धान्त की आलोचना ही की बल्कि एक नया रोजगार तथा आय सिद्धान्त भी प्रतिपादित किया जिसे आधुनिक अर्थशास्त्री सही मानते हैं। अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित करने के लिए केन्ज़ ने विश्लेषण हेतु कई एक नई धारणाओं जैसे कि उपभोग प्रवृत्ति (propensity to consume), गुणक (multiplier), निवेश प्रेरणा (inducement to invest) एवं पूँजी की सीमान्त उत्पादकता (marginal efficiency of capital), नकदी अधिमान (liquidity preference) आदि को स्थापित किया। इन सब धारणाओं की सविस्तार व्याख्या तो हम आगामी अध्याय में करेंगे, हम यहाँ पर संक्षेप में तथा स्थूल रूप से इस सिद्धान्त का परिचय देंगे।

इस विषय में महत्त्वपूर्ण बात जो समझ लेनी चाहिए, वह यह है कि केन्ज़ का रोजगार सिद्धान्त अल्पकाल के लिए ही है क्योंकि केन्ज़ यह मान लेते हैं कि पूँजी की मात्रा, जनसंख्या व श्रम शक्ति, तकनीकी ज्ञान, श्रमिकों की कार्यकुशलता आदि में कोई वृद्धि नहीं होती। यही कारण है कि केन्ज़ के सिद्धान्त में रोजगार की मात्रा, राष्ट्रीय आय अथवा उत्पादन के स्तर पर ही निर्भर करती है क्योंकि यदि पूँजी की मात्रा, तकनीकी ज्ञान, श्रमिकों की कार्यकुशलता आदि स्थिर रहें तो अधिक श्रमिकों (जो पहले बेरोजगार हों) को काम में लगाकर (अर्थात् रोजगार देकर) ही राष्ट्रीय आय बढ़ाई जा सकती है। अतः केन्ज़ के अल्पकाल में राष्ट्रीय आय के अधिक होने का अर्थ है रोजगार की अधिक मात्रा और राष्ट्रीय आय के कम होने का अर्थ है रोजगार की कम मात्रा। **अतः केन्ज़ का सिद्धान्त रोजगार निर्धारण का सिद्धान्त भी है और राष्ट्रीय आय निर्धारण का भी।** परन्तु विश्लेषण को सरल बनाने के लिए हम इस अध्याय में तो रोजगार को लेकर केन्ज़ के सिद्धान्त की व्याख्या करेंगे और जो भी रेखाकृतियाँ हम बनाएँगे उनमें रोजगार के निर्धारण को प्रत्यक्ष रूप से दिखाएँगे। अगले अध्याय में हम राष्ट्रीय आय को लेकर केन्ज़ के सिद्धान्त की व्याख्या करेंगे और जो भी हम वहाँ रेखाकृतियाँ बनाएँगे उनमें राष्ट्रीय आय के निर्धारण को प्रत्यक्ष रूप से दर्शाएँगे। परन्तु **रोज़गार तथा राष्ट्रीय आय दोनों को निर्धारित करने वाले तत्त्व समान हैं।** केवल उनके निर्धारण की व्याख्या के लिए प्रयोग की गई रेखाकृतियों का ही अन्तर है।

रोजगार (अथवा आय) के निर्धारण के विषय में केन्ज़ का आधारभूत विचार **प्रभावी अथवा समर्थ माँग (Effective Demand) का नियम है।** किसी देश में अल्पकाल में रोज़गार की मात्रा वस्तुओं के लिए समस्त समर्थ माँग पर निर्भर करती है। समस्त समर्थ माँग जितनी अधिक होगी रोज़गार की मात्रा उतनी अधिक होगी। आप जानते हैं कि किसी एक फर्म में कितने व्यक्तियों को रोजगार पर लगाया जायेगा, यह इस बात पर निर्भर करता है कि उस फर्म के उद्यमी (entrepreneur) के विचार में कितने व्यक्तियों को लगाने से उसको अधिकतम लाभ होगा तथा इसी प्रकार सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में कितने व्यक्ति रोजगार में लगाये जायेंगे, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि उस अर्थव्यवस्था के सभी उद्यमी अपना-अपना लाभ अधिकतम करने के लिए कुल कितने व्यक्ति रोजगार में लगाने का निर्णय करते हैं। **सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में रोजगार का निर्धारण समस्त पूर्ति (Aggregate Supply) और समस्त माँग (Aggregate Demand) द्वारा होता है।**

समस्त पूर्ति (Aggregate Supply)

समस्त पूर्ति (Aggregate supply) का यह अर्थ है कि अर्थव्यवस्था के सभी उद्यमी श्रमिकों को काम पर लगाते हैं तो उन्हें उन श्रमिकों द्वारा बनायी गई कुल वस्तुओं के लिए जितनी कुल मुद्रा राशि **अवश्य** मिलनी चाहिए ताकि वे उन श्रमिकों को कार्य अथवा रोज़गार पर लगाये रखें।

एक समस्त पूर्ति वक्र (aggragate supply curve) श्रमिकों की विभिन्न संख्याओं को काम (रोज़गार उपलब्ध कराने तथा उनकी समस्त पूर्ति कीमतों (aggregate supply prices) में सम्बन्ध को प्रकट करता है। समस्त पूर्ति कीमत (aggregate supply price) से हमारा तात्पर्य यह है देश के सभी उद्यमकर्त्ताओं द्वारा श्रमिकों की किसी एक संख्या को काम पर लगने से उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं से कितनी मुद्रा-राशि अवश्य प्राप्त हो जिससे वे उन्हें काम पर लगाने के लिए प्रेरित हों। (At any given level of employment of labour, aggregate supply price is the total amount of money which all the entrepreneurs in the economy, taken together, *must expect to receive* from the sale of the output produced by that given number of men, if it is just worth employing them)। दूसरे शब्दों में, अर्थव्यवस्था में श्रमिकों की किसी एक संख्या को रोजगार उपलब्ध कराने पर उन श्रमिकों द्वारा किये गये समस्त **उत्पादन की कुल लागत** (Total Cost) को अर्थव्यवस्था की समस्त पूर्ति कीमत कहते हैं। स्पष्ट है कि उद्यमियों को जब तक यह कुल लागत प्राप्त न हो रही हो, वे श्रमिकों की उस संख्या को कैसे रोजगार पर लगायेंगे? श्रमिकों की उस संख्या पर उत्पादन पर लगी हुई कुल लागत पूरी न होने पर उद्यमी उस संख्या से कम श्रमिक लगायेंगे। इसी प्रकार रोजगार पर लगाए गये श्रमिकों की भिन्न-भिन्न संख्याओं पर अर्थव्यवस्था की कुल लागत या समस्त पूर्ति कीमत (aggregate supply price) भिन्न-भिन्न होगी अर्थात् रोजगार पर लगाये गये श्रमिकों की विभिन्न संख्याओं के अनुसार अर्थव्यवस्था की समस्त पूर्ति कीमत को एक वक्र द्वारा प्रकट किया जा सकता है।

अर्थव्यवस्था का समस्त पूर्ति वक्र अन्ततः उत्पादन सम्बन्धी भौतिक अथवा तकनीकी स्थितियों (technical conditions) पर निर्भर करता है। उत्पादन सम्बन्धी ये भौतिक या तकनीकी दशाएं प्रायः अल्पकाल में नहीं बदलती। अतः किसी समय जब ये तकनीकी दशाएं दी गई हों, उत्पादन बढ़ाने के लिए अधिक श्रमिकों को कार्य पर लगाना होता है अर्थात् उनको रोज़गार उपलब्ध कराना होता है। किन्तु जब उत्पादन तथा रोज़गार बढ़ाये जाते हैं तो उत्पादन पर अधिक लागत उठानी पड़ेगी। उत्पादन चाहे बढ़ती दर, घटती या समान लागत के नियम के अनुसार हो, अतिरिक्त उत्पादन हेतु जब अधिक श्रमिकों को कार्य अथवा रोज़गार पर लगाया जाता है तो उस पर अधिक लागत उठानी पड़ेगी। अतः उत्पादक कार्यों में पहले से अधिक श्रमिकों को काम पर लगाया जाएगा जब उद्यमकर्त्ताओं को यह आशा होगी कि उनके द्वारा उत्पादित पदार्थों पर अधिक व्यय किया जाएगा जिससे उठाई गयी अतिरिक्त लागत की पूर्ति हो सके। अतः समस्त पूर्ति वक्र (Aggregate Supply Curve) दायीं ओर ऊपर चढ़ेगा। समस्त पूर्ति वक्र की ढाल कितनी होगी यह अर्थव्यवस्था के उत्पादन की दी हुई भौतिक या तकनीकी दशाओं पर निर्भर करती है। यदि उत्पादन की तकनीकी दशाएं ऐसी हैं कि उत्पादन बढ़ाने से सीमान्त लागत (marginal cost) में वृद्धि नहीं होती तो समस्त पूर्ति वक्र ऊपर की ओर चढ़ता हुआ सरल रेखा (straight line) की आकृति का होगा। यदि तकनीकी दशाएं ऐसी हैं कि अधिक श्रमिकों को काम पर लगाने से **ह्रासमान प्रतिफल** (diminishing returns) प्राप्त होते हैं तो समस्त पूर्ति वक्र की ढाल अधिक श्रमिकों के प्रयोग से बढ़ेगी जिससे यह प्रतीत होगा कि रोज़गार तथा उत्पादन में वृद्धि से सीमान्त तथा औसत लागतें बढ़ती हैं। इसके अतिरिक्त यदि रोज़गार बढ़ने के साथ श्रमिकों की मज़दूरी दर (wage rate) बढ़ जाती है तो भी अधिक श्रमिकों को उत्पादन कार्य में लगाने से समस्त पूर्ति वक्र की ढाल रोज़गार तथा उत्पादन मात्रा में वृद्धि के साथ बड़ जायेगी। किन्तु केन्ज़ का विचार था कि मन्दी की अवस्था में भीषण बेरोज़गारी पाए जाने के कारण अधिक श्रमिकों को उत्पादन कार्य में लगाने से मज़दूरी-दर स्थिर रहेगी। रेखाकृति 4.1 में समस्त पूर्ति वक्र *AS* खीचा गया है। इसे देखने से ज्ञात होगा कि जैसे-जैसे अधिक व्यक्तियों को काम पर लगाया जाता है समस्त पूर्ति वक्र की ढाल बढ़ती जाती है। पूर्ण रोज़गार के स्तर N_F पर समस्त पूर्ति वक्र *AS* सीधा उदग्र रेखा हो जाता है। इसका कारण यह है कि पूर्ण रोज़गार के स्तर से अधिक व्यक्तियों को काम पर लगाया नहीं जा सकता चाहे उन्हें कितनी अधिक मुद्रा-राशि ही क्यों न प्राप्त हो।

समस्त माँग (Aggregate Demand)

अब मांग पक्ष को लें। समस्त मांग का अर्थ है कि देश की जनता एक वर्ष में वस्तुओं तथा सेवाओं पर कितना व्यय वास्तव में करती है। क्योंकि केन्ज़ अपने विश्लेषण में कीमत-स्तर को स्थिर मान लेते हैं इसलिए वस्तुओं तथा सेवाओं पर किया गया व्यय उनकी मांगी गई मात्राओं को व्यक्त करता है। दूसरे शब्दों में, अर्थव्यवस्था का समस्त मांग वक्र रोज़गार के विभिन्न स्तरों पर **समस्त माँग कीमतों** (aggregate demand prices) को व्यक्त करता है। अर्थात् जब अर्थव्यवस्था में श्रमिकों की किसी एक संख्या को रोजगार पर लगाने पर जितना उत्पादन होता है, उसको बेचने से अर्थव्यवस्था के

सभी उद्यमी **कुल जितनी राशि वास्तव में प्राप्त करने की आशा करते हैं,** (expect to receive) वह रोजगार के उस स्तर पर की **समस्त-माँग कीमत** होती है (The aggregate demand price at any level of employment is the amount of money which all the entrepreneurs in the economy taken together *do expect* what they will receive if they sell the output produced by this given number of men)। दूसरे शब्दों में, जब अर्थव्यवस्था में रोजगार का कोई एक स्तर हो तो उस समय उस स्तर पर हुए कुल उत्पादन के बेचने से जितनी कुल राशि प्राप्त (receipts) होने की आशंसा (expectation) हो, वही कुल राशि रोजगार के उस स्तर पर **समस्त मांग कीमत** होगी। समस्त पूर्ति की तरह अर्थव्यवस्था में रोजगार के भिन्न-भिन्न स्तरों के अनुसार उनकी अपनी-अपनी समस्त मांग कीमत होगी, अर्थात् हम समस्त मांग कीमत की अनुसूची तैयार कर सकते हैं और उसे वक्र के रूप में भी दर्शाया जा सकता है जिसे समस्त मांग वक्र कहते हैं। जैसे अधिक रोज़गार प्रदान करके उत्पादन में वृद्धि की जाती है, अर्थव्यवस्था की वस्तुओं तथा सेवाओं के लिए समस्त मांग बढ़ेगी। इसका अभिप्राय यह है कि जैसे देश में रोज़गार की मात्रा में वृद्धि होती है जनता द्वारा वस्तुओं तथा सेवाओं पर व्यय (अर्थात मांग कीमत) भी बढ़ता है। इसलिए समस्त मांग वक्र रोज़गार के बढ़ने पर ऊपर की ओर चढ़ता है। यदि कुल मांग अथवा व्यय में वृद्धि से रोज़गार में समान अनुपात से वृद्धि होती है तो समस्त-मांग वक्र ऊपर की ओर चढ़ता हुआ सरल रेखा (linear) के आकार का होगा। किन्तु ऐसा वास्तविक प्रतीत नहीं होता। वास्तव में कारों जैसे पूँजी-प्रधान वस्तुओं पर व्यय (अथवा उनकी मांग) से उतना रोज़गार नहीं बढ़ता जितना कि श्रम-प्रधान कपड़े के वस्त्रों पर व्यय से। सामान्यतया रोज़गार तथा उत्पादन में वृद्धि के साथ कुल मांग अथवा व्यय में वृद्धि समान अनुपात से नहीं होती। जैसे अधिक श्रमिकों को रोज़गार उपलब्ध करके उत्पादन बढ़ाया जाता है तो समस्त मांग अथवा कुल व्यय में वृद्धि तो होती है किन्तु कम दर से। अर्थात् अधिक रोज़गार व उत्पादन की मात्राओं पर समस्त मांग वक्र की ढाल (slope) घट जाती है जैसाकि रेखाकृति 4.1 में वक्र *AD* द्वारा प्रदर्शित है।

केन्ज़ का एक महत्वपूर्ण योगदान समस्त मांग की धारणा है जो परंपरागत विचारधारा से काफी भिन्न है। यदि हम सरकार द्वारा व्यय तथा निर्यात द्वारा उत्पन्न मांग को विश्लेषण में सम्मिलित न करें तो केन्ज़ के अनुसार समस्त मांग के दो घटक हैं (a) **लोगों की उपभोग के लिए वस्तुओं तथा सेवाओं की मांग** जिसे साधारणतया **उपभोग माँग** (consumption demand) तथा उपभोग व्यय कहते हैं (b) उद्यमकर्त्ताओं द्वारा **निवेश पर किया गया व्यय** अथवा निवेश मांग (investment demand)। उपभोग व्यय आय तथा उपभोग प्रवृत्ति पर निर्भर करता है। यह उपभोग प्रवृत्ति लोगों की अनेक उद्देश्यों जैसे कि कठिन परिस्थितियों जैसे कि बीमारी, बेरोज़गारी आदि के लिए बचत करने की इच्छा तथा कुछ प्रत्याशित आवश्यकताओं जैसे कि बच्चों को शिक्षा, उनका विवाह आदि के लिए बचत करने तथा भविष्य में निवेश करने के उद्देश्य से धन जुटा कर रखने की इच्छा पर निर्भर करता है। इसके अतिरिक्त समूचे समाज की उपभोग प्रवृति सामान्य कीमत स्तर, सरकार की कराधान तथा व्यय नीति (fiscal policy), ब्याज दर तथा लोगों की भविष्य के विषय में आशंसाएं (expectations) आदि द्वारा निर्धारित होती है। उपभोग प्रवृत्ति को निर्धारित करने वाले तत्वों की सविस्तार विवेचना हम एक अगले अध्याय में करेंगे। समाज की उपभोग प्रवृति दी हुई होने पर उपभोग मांग आय में वृद्धि के साथ बढ़ती है। परन्तु इसमें वृद्धि आय में वृद्धि की तुलना में कम होती है। अत: उपभोग मांग का वक्र आय के बढ़ने से ऊपर की ओर चढ़ता है। यदि सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति स्थिर रहती है तो उपभोग मांग सरल रेखा की आकृति का होगा। परन्तु आय में वृद्धि होने पर सीमान्त उपयोग प्रवृत्ति (marginal propensity to consume) घटती है तो उपभोग मांग वक्र की ढाल आय में वृद्धि के साथ घटेगी।

जहाँ तक समस्त माँग के दूसरे संघटक निवेश मांग का सम्बन्ध है केन्ज़ ने इसे आय से स्वतंत्र (autonomous) माना था। केन्ज़ के मतानुसार, निवेश की मांग एक ओर तो ब्याज की दर (rate of interest) और दूसरी ओर पूँजी की सीमान्त उत्पादकता (marginal efficiency of capital) अर्थात् पूंजी निवेश से प्रत्याशित लाभ की दर (expected rate of profit) पर निर्भर करती है।

श्रम के लिए रोज़गार में वृद्धि होने पर तथा उसके फलस्वरूप उत्पादन के बढ़ने पर समस्त मांग वक्र ऊपर की ओर चढ़ेगा और सामान्यत: रोज़गार व उत्पादन में वृद्धि के साथ इसकी ढाल घटती जायेगी जैसाकि रेखाकृति 4.1 से स्पष्ट है। अत: समस्त मांग वक्र का **स्तर तथा आकृति** एक ओर तो उपभोग पर व्यय और दूसरी ओर निवेश पर व्यय पर निर्भर करती है। यदि उपभोग प्रवृत्ति स्थिर रहती है तथा निवेश व्यय कुल आय (अर्थात् कुल रोज़गार एवं उत्पादन) से स्वतंत्र है जैसाकि कि केन्ज़ महोदय की मान्यताएं हैं तो समस्त मांग का वक्र (*AD*) सरल रेखा के प्रकार का होगा। किन्तु

जैसा कि रेखाकृति 4.1 में दिखाया गया है समस्त मांग का वक्र की ढाल कुल रोज़गार में वृद्धि के साथ घटती जाती है जो कि इस आधार पर बनाया गया है कि आय व रोज़गार में वृद्धि के साथ समस्त मांग में वृद्धि घटती दर से होती है।

रोजगार के सन्तुलन स्तर का निर्धारण (Determination of the Equilibrium Level of Empoyment)

रेखाकृति 4.1 में एक काल्पनिक अर्थव्यवस्था के समस्त पूर्ति वक्र (Aggregate Supply Curve) तथा समस्त माँग-वक्र (Aggregate Demand Curve) खींचे गए हैं। सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में जितने व्यक्ति काम पर लगाये गए हैं, उनकी संख्या को तो X-अक्ष पर दिखाया गया है और उत्पादित वस्तुओं तथा सेवाओं को बेचने से सभी उद्यमियों को कुल प्राप्त होने वाली रकम (receipts or proceeds) को, अर्थात् जितनी कुल रकम सारा समाज उद्यमियों द्वारा प्रस्तुत उत्पादन पर व्यय करता है, उसको Y-अक्ष पर दिखाया गया है।

पहले समस्त पूर्ति के वक्र *AS* को देखें। यह दिखलाता है कि उत्पादन को बेचने से उद्यमियों को जितनी भिन्न-भिन्न कुल राशियाँ प्राप्त होती हैं, उनके अनुसार वे सभी सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में कुल कितने व्यक्तियों को रोजगार पर लगाने के लिए तैयार होंगे। उदाहरणतया, यदि उद्यमियों को निश्चित हो कि उन्हें N_1C रूपये अवश्य प्राप्त होंगे, तो वे श्रमिकों की ON_1 संख्या को रोजगार पर लगायेंगे। अब समस्त माँग के वक्र *AD* को देखें। यह दिखलाता है कि रोजगार के भिन्न स्तरों पर उद्यमियों को कितनी-कितनी कुल राशि प्राप्त होने की आशा है। उदाहरणतया जब वे ON_1 व्यक्तियों को रोजगार पर लगाते हैं तो वे आशा करते हैं कि उन्हें N_1H रुपये ON_1 व्यक्तियों द्वारा किये गये उत्पादन को बेचने से प्राप्त होंगे।

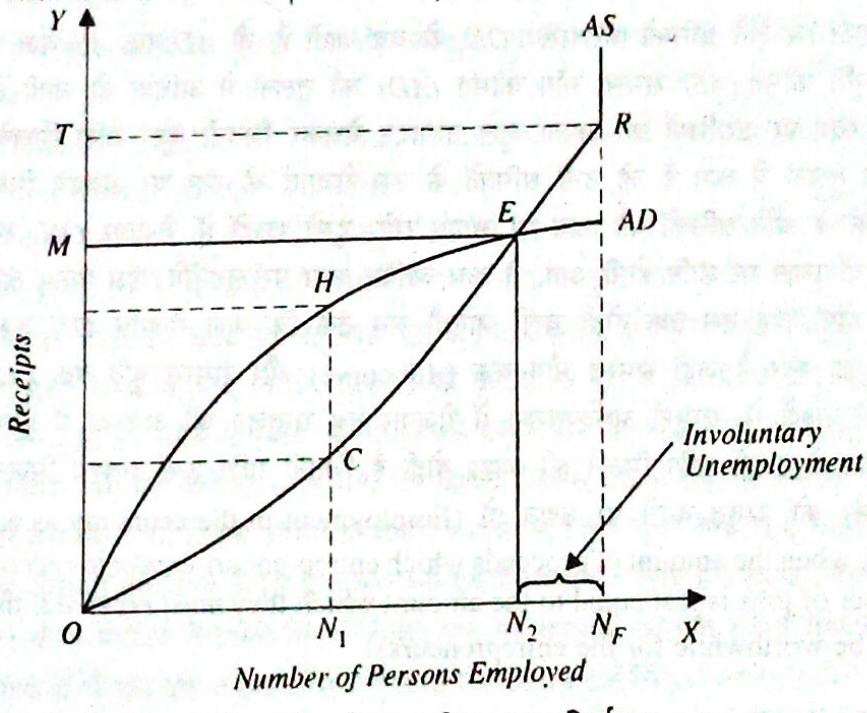

रेखाकृति : रोजगार की मात्रा का निर्धारण

AS वक्र में एक विशेष देखने योग्य बात यह कि यह वक्र पहले धीमी गति से ऊँचा उठता है। इसका तात्पर्य यह है कि ज्यों-ज्यों रोजगार पर लगाये गए व्यक्तियों की संख्या बढ़ाई जाती है, उत्पादन पर लागत शीघ्र गति से नहीं बढ़ती अर्थात् आरम्भ में उत्पादन लागत शीघ्र गति से नहीं बढ़ती। यदि उद्यमियों को जो आय प्राप्त होती है, वह बढ़ती जाती है तो वे रोजगार बढ़ाते जाएँगे यहाँ तक कि जितने भी व्यक्ति रोजगार चाहते हैं वे सभी रोजगार में लगा लिए जाते हैं। रेखाकृति 4.1 में कुल ON_F व्यक्ति रोजगार चाहते हैं, तो ज्योंही उद्यमियों को कुल N_FR मुद्रा-राशि प्राप्त होने लग जाती है, वे उन सभी व्यक्तियों को लगाने के लिए उद्यत हो जाते हैं। परन्तु अब यदि उद्यमियों को प्राप्त होने वाली राशि N_FR अथवा *OT* से भले ही बढ़ जाए, कुल रोजगार ON_F से आगे नहीं बढ़ सकता अर्थात् इस बिन्दु पर पूर्ण रोजगार स्थापित हो जाएगा। अत: ON_F स्तर पर समस्त पूर्ति वक्र *AS* लम्बरूप (verlical) हो जाता है।

अब *AD* वक्र की आकृति को ध्यानपूर्वक समझें। यह आरम्भ में ही बड़ी तीव्रता से ऊँचा चढ़ने लग जाता है। यह इस बात का सूचक है कि जब पहले-पहल रोजगार बढ़ता है तो उद्यमियों को उत्पादन से जो राशि वास्तव में प्राप्त होने

लेना चाहिए। केन्जियन अर्थ में द्रव्य की पूर्ति का रूप केवल सिक्के और नोट ही नहीं होते, बल्कि इसके अन्तर्गत बैंकों की जमा-राशियाँ भी सम्मिलित होती हैं। किसी अर्थ-व्यवस्था में द्रव्य की कुल पूर्ति मौद्रिक एवं बैंकिंग अधिकरणों द्वारा निश्चित की जाती है। सभी जानते हैं कि किसी समुदाय में द्रव्य की कुल पूर्ति सामान्यतः उस देश की केन्द्रीय बैंकिंग संस्था द्वारा मौद्रिक एवं साख-नीतियों के माध्यम से निर्धारित की जाती है। द्रव्य की पूर्ति ब्याज-दर पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है। द्रव्य की पूर्ति एवं ब्याज-दर का सम्बन्ध विलोम (inverse) होता है। **द्रव्य-पूर्ति जितनी अधिक होती है, ब्याज-दर उतनी ही कम होती है; और द्रव्य-पूर्ति जितनी कम होती है, ब्याज-दर उतनी ही अधिक होती है।** ब्याज-दर द्रव्य-पूर्ति पर कुछ भी प्रभाव नहीं डालती है। द्रव्य-पूर्ति बैंकिंग प्रणाली द्वारा निर्धारित होती है। जनता स्वयं प्रत्यक्ष रूप से द्रव्य-पूर्ति पर नियन्त्रण नहीं करती।

यहाँ तक हमने द्रव्य के दोनों पक्षों (माँग एवं पूर्ति) पर विचार कर लिया है। जिस प्रकार किसी वस्तु का सन्तुलन मूल्य उस वस्तु विशेष की माँग एवं पूर्ति द्वारा निर्धारित किया जाता है, उसी प्रकार, ब्याज-दर एक ओर तो नकदी-वरीयता द्वारा और दूसरी ओर द्रव्य की पूर्ति द्वारा निर्धारित की जाती है। केन्स के कथनानुसार, "ब्याज की दर धन को नकदी के रूप में रखने की इच्छा तथा उपलब्ध नकदी की मात्रा में सन्तुलन स्थापित करती है।" ("The rate of interest equilibrates the desire to hold wealth in the form of cash with the available quantity of cash.") इस प्रकार ब्याज-दर एक ऐसी कीमत है जिसमें द्रव्य की माँग एवं पूर्ति के अनुसार उतार-चढ़ाव होते रहते हैं। यदि द्रव्य-पूर्ति को स्थिर (given) मान लिया जाय तो ब्याज-दर समुदाय की नकदी-वरीयता (liquidity preference of the community) द्वारा निर्धारित होती है; और यदि नकदी-वरीयता को स्थिर (given) मान लिया जाय तो ब्याज-दर बैंकिंग प्रणाली की द्रव्य-नीति से निर्धारित होती है।

अब हम **निवेश-प्रेरणा** के सारांश को निम्न दो तर्क-वाक्यों (propositions) के रूप में व्यक्त करते हैं :

(1) यदि ब्याज-दर को स्थिर मान लिया जाय तो पूँजी की सीमान्त उत्पादकता जितनी ऊँची होगी, निवेश की मात्रा भी उतनी ही अधिक होगी।

(2) यदि पूँजी की सीमान्त उत्पादकता को स्थिर मान लिया जाय तो ब्याज-दर जितनी नीची होगी, निवेश की मात्रा भी उतनी ही अधिक होगी।

रोजगार-सिद्धान्त का सारांश

[SUMMARY OF EMPLOYMENT THEORY]

केन्स द्वारा प्रतिपादित रोजगार-सिद्धान्त के सारांश को अग्र तालिका के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

रोजगार-सिद्धान्त के सन्दर्भ में निम्नलिखित स्मरणीय है :

(1) प्रभावपूर्ण माँग = कुल उत्पादन = कुल आय = रोजगार। उत्पादन स्वभावतः प्रभावपूर्ण माँग के कारण होता है। उत्पादन से आय होती है और साथ ही साथ इससे रोजगार भी उत्पन्न होता है। ये चारों ही मात्रा में बराबर होते हैं। दूसरे शब्दों में, रोजगार प्रभावपूर्ण माँग पर निर्भर रहता है और इसी से उत्पन्न होता है।

(2) प्रभावपूर्ण माँग A.S.F. (Aggregate Supply Function) एवं A.D.F. (Aggregate Demand Function) से शासित होती है। केन्स A.S.F. को अल्पकाल में स्थिर मानते हैं और पूर्ण रूप से A.D.F. पर ही ध्यान देते हैं।

(3) A.D.F. स्वयं उपभोग व्यय, निवेश-व्यय एवं सरकारी व्यय से शासित होता है (स्मरण रहे, केन्स ने अपने सिद्धान्त के प्रतिपादन में सरकारी व्यय की उपेक्षा की है)।

(4) उपभोग-व्यय का निर्धारण (अ) **आय के आकार**, और (ब) **समुदाय की उपभोग प्रवृत्ति** के आधार पर होता है। चूँकि केन्स द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त अल्पकालिक है, इसलिए उपभोग-व्यय **स्थिर** (stable) माना जा सकता है क्योंकि अल्पकाल में उपभोग-प्रवृत्ति नहीं बदलती।

(5) निवेश-व्यय (अ) **पूँजी की सीमान्त उत्पादकता**, और (ब) **ब्याज-दर** द्वारा शासित होता है। उपभोग-व्यय की तुलना में यह अधिक **अस्थिर** होता है।

(6) पूँजी की सीमान्त उत्पादकता स्वयं (अ) **पूँजी-परिसम्पत्ति की पूर्ति-कीमत**, और (ब) **पूँजी-परिसम्पत्ति की सम्भावित प्राप्ति** द्वारा निर्धारित की जाती है। पूँजी की सीमान्त उत्पादकता (M.E.C.) अस्थिर होती है क्योंकि पूँजी-परिसम्पत्ति की सम्भावित प्राप्ति सम्बन्धी आशंसाएँ मनोवैज्ञानिक तत्वों पर आधारित होती हैं।

(7) ब्याज-दर (अ) **समुदाय की नकदी-वरीयता**, और (ब) **द्रव्य की पूर्ति** द्वारा निर्धारित होती है। नकदी-वरीयता (L.P.) स्वयं तीन उद्देश्यों से निर्धारित होती है—(अ) **लेन-देन उद्देश्य**, (ब) **सावधानी उद्देश्य**, और (स) **सट्टा-उद्देश्य**, जबकि द्रव्य-पूर्ति प्रत्यक्ष रूप से बैंकिंग प्रणाली द्वारा नियन्त्रित होती है।

(8) अन्तिम, सरकारी व्यय इस अर्थ में "स्वतन्त्र" (autonomous) होता है कि यह निजी निवेश की भाँति पूँजी की सीमान्त उत्पादकता (M.E.C.) तथा ब्याज-दर जैसे स्वतन्त्र आर्थिक तत्वों (independent economic variables) पर निर्भर नहीं होता है। यह आर्थिक तत्वों के बजाय अधिकांशतः राजनीतिक तत्वों से शासित होता है।

केन्जियन रोजगार सिद्धान्त के उपर्युक्त सारांश से स्पष्ट हो जाता है कि मुद्रा-अवस्फीति (deflation) एवं बेरोजगारी के उपचार के लिए क्या-क्या कदम उठाये जा सकते हैं। केन्जियन अर्थशास्त्र अवस्फीति एवं बेरोजगारी से लड़ने के लिए व्यावहारिक कार्यक्रम प्रस्तुत करता है। चूँकि केन्स कुल पूर्ति-क्रिया (A.S.F.) को स्थिर मानते हैं, अतः वे अपने ध्यान को पूर्ण रूप से कुल माँग-क्रिया (A.D.F.) की वृद्धि पर ही लगाये रखते हैं।

रोजगार-वृद्धि का एक मार्ग यह भी है कि उपभोग-व्यय की वृद्धि की जाय। जैसा कि तालिका से स्पष्ट है, उपभोग-व्यय (1) आय के आकार, और (2) उपभोग-प्रवृत्ति पर निर्भर रहता है। वास्तव में, प्रथम (अर्थात् आय का आकार) एक परतन्त्र संघटक (dependent variable) है और स्वतन्त्र संघटक

(independent variables) को परिवर्तित किये बिना इसे बदला नहीं जा सकता है; तथा द्वितीय (अर्थात् उपभोग-प्रवृत्ति) एक ऐसा संघटक है जिसे परिवर्तित किया जा सकता है। प्रभावपूर्ण माँग में वृद्धि करने की दृष्टि से उपभोक्ताओं को उपभोग-वस्तुओं पर अधिक व्यय करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। वास्तव में, यह कोई सरल कार्य नहीं है क्योंकि पुरानी आदतों, रीति-रिवाजों और परम्पराओं के कारण उपभोग-व्यय स्थिर ही रहता है। फिर भी राष्ट्रीय आय के पुनर्वितरण द्वारा समुदाय की उपभोग-प्रवृत्ति को बढ़ाया जा सकता है, अर्थात् राष्ट्रीय आय को अमीरों (जिनमें उपभोग-प्रवृत्ति न्यून होती है) की ओर से गरीबों (जिनमें उपभोग-प्रवृत्ति अधिक होती है) की ओर राजकोषीय उपायों द्वारा हस्तान्तरित किया जा सकता है। परन्तु केन्स इस पर अधिक जोर नहीं देते क्योंकि वह वर्तमान संगठन को परिवर्तित करने हेतु किसी क्रान्तिकारी प्रयास के पक्ष में नहीं थे।

यही कारण था कि केन्स उपभोग-वृद्धि की अपेक्षा निवेश-वृद्धि पर अधिक जोर देते थे। किन्तु प्रश्न यह है कि समुदाय अपने निवेश-व्यय को किस प्रकार बढ़ा सकता है ? इस प्रसंग में उपर्युक्त तालिका दो सुझाव प्रस्तुत करती है जिनका निवेश-वृद्धि के लिए अलग-अलग अथवा यौगिक रूप में प्रयोग किया जा सकता है। विधि यह है कि या तो पूँजी की सीमान्त उत्पादकता (M.E.C.) को बढ़ाया जाय या ब्याज-दर को कम कर दिया जाय, अथवा दोनों ही विधियों का एक साथ प्रयोग किया जाय (जब एक को बढ़ाया जाय तो दूसरी को कम किया जाय)। पूँजी की सीमान्त उत्पादकता (M.E.C.) की वृद्धि का उपाय केवल यह है कि या तो पूँजी-परिसम्पत्ति की पूर्ति-कीमत घटे या पूँजी-परिसम्पत्ति द्वारा होने वाला प्रतिफल बढ़े। पूँजी-परिसम्पत्तियों की पूर्ति-कीमत को सम्भवतः समुदाय (सरकार) द्वारा कम नहीं किया जा सकता है। विशेषकर अल्पकाल में पूर्ति-कीमत को कम करने के उद्देश्य से पूर्ति-दशाओं पर काबू पा सकना कठिन है। पूँजी की सीमान्त उत्पादकता (M.E.C.) का द्वितीय निर्धारण पूँजी-परिसम्पत्ति की प्राप्ति होती है। यह प्रथम निर्धारक की अपेक्षा समुदाय (सरकार) द्वारा अधिक शीघ्रतापूर्वक वश में किया जा सकता है किन्तु इसे भी उचित दिशा में परिवर्तित कर सकना कठिन ही है। समुदाय (सरकार) द्वारा व्यवसायी वर्ग में आशावादिता की वृद्धि की अपेक्षा निराशावादिता को उत्पन्न करना सरल है। संक्षेप में, सरकार द्वारा पूँजी परिसम्पत्ति की प्रत्याशित प्राप्ति की वृद्धि कर सकना कठिन है। अतः पूँजी की सीमान्त उत्पादकता (M.E.C.) को बढ़ाकर निवेश में वृद्धि करने की आशा न के बराबर ही होती है।

ब्याज-दर निवेश का दूसरा निर्धारक है और इसे काबू में ला सकना सरल है तथा सरकारी क्रिया का इस पर तुरन्त प्रभाव भी पड़ता है। निवेश को प्रेरित करने के लिए इसे आयोजित ढंग से कम किया जा सकता है। स्मरण रहे कि ब्याज-दर माँग-पक्ष से नकदी-वरीयता द्वारा और पूर्ति-पक्ष से द्रव्य की मात्रा द्वारा निर्धारित होती है। नकदी-वरीयता पर सरकारी नियन्त्रण का कम प्रभाव पड़ता है क्योंकि इसका निर्धारण अधिकांश में मनोवैज्ञानिक तत्वों पर आधारित होता है। इसके विपरीत, द्रव्य की मात्रा को सरलतापूर्वक परिवर्तित किया जा सकता है क्योंकि इसका नियन्त्रण द्रव्य एवं बैंकिंग अधिकरणों